राजस्थान के सुरक्षा प्रहरी–दुर्ग

डॉ. चित्रा तंवर

सारांश

जहां एक ओर राजस्थान का इतिहास रणबांकुरों के अदम्य साहस और शूरवीरता की कहानी कहता है। वहीं दूसरी ओर राजस्थान के ये सुरक्षा प्रहरी दुर्ग स्थापत्य कला के अनूठे उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। ये दुर्ग सामरिक दृष्टि से बनाये गये प्राचीन काल व मध्य काल में अपनी विविधतापूर्ण संरचना के लिए विश्वविख्यात हैं। इनकी सुन्दरता, विशालता, बेजोड़ मजबूती सैलानियों का मन स्वतः ही मोह लेती है।

राजस्थान के ये दुर्ग इतिहास के अनेक युद्धों के साक्षी रहने के साथ–साथ राजस्थान के सांस्कृतिक गौरव के प्रतीक हैं। इसके अलावा वर्तमान युग में पर्यटन विभाग को भी इस सांस्कृतिक विरासत से खासी आमदनी प्राप्त होती है। राजस्थान में जल दुर्ग, गिरि दुर्ग, सैन्य दुर्ग, पारिध दुर्ग, सहाय दुर्ग की वास्तुकला इतनी अधिक प्रशंसनीय है कि कोई भी पर्यटक इन अजेय व अभेद्य दुर्ग की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।

इन दुर्गों का एक बड़ा लाभ यह मिला है कि जहां–जहां जिन राजवंशों के अधीन ये किले रहे उन्होंने वहां–वहां भव्य मंदिरों, तालाब, बावड़ियां, मस्जिदें जैसे अन्य दर्शनीय स्थल भी बनवाये। जो अद्भुत हरि दर्शन स्थल बनकर उन दुर्ग निर्माता शासकों की उच्च आध्यात्मिक भावना को दर्शाते हैं। जो आज के ईश्वरीय भक्ति के मानवीय आस्था स्थल के रूप में स्थापित हो चुके हैं।

मूल शब्द

पारिख दुर्ग, औदक, छान्चन, खालसा, अखेपोल, दांतेदार, मेहराव, बारियां, तोखद्वार, पारिध दुर्ग, सहाय दुर्ग, पीलखाना।

मनुस्मृति में दुर्ग के महत्व को दृष्टिगत रखते हुए कहा गया है कि दुर्ग में बैठा राजा उसी तरह अपने शत्रुओं से सुरक्षित है जैसे घर में बंधा हिरण एक व्याघ्र से। याज्ञवल्क्य के अनुसार दुर्ग से न केवल राजा की सुरक्षा होती है अपितु प्रजा एवं कोष की भी रक्षा होती है। यही कारण है दुर्ग निर्माण की कहानी भी उतनी ही पुरानी है जितनी कि मानव सभ्यता। यही कारण है कि पौराणिक काल में भाक्ति प्रदर्शन के लिए पुरों का निर्माण होता था।

भात्रु आक्रामणों से जूझने की परिवेशगत स्थिति को ध्यान में रखकर दुर्ग स्थापत्य को कई श्रेणियों में विभक्त किया गया है। मनुस्मृति में कहा गया है कि राजा धन्व दुर्ग, मही दुर्ग, जल दुर्ग, वृक्ष दुर्ग, मनुष्य दुर्ग, अथवा गिरि दुर्ग का आश्रम कर नगर में निवास करे। मनुस्मृति के अनुसार धन्व दुर्ग कम से कम बीस कोस तक पानी से रहित रेतीली भूमि युक्त स्थान होता है जबकि मही दुर्ग ईट–पत्थर आदि से निर्मित होता है। जल दुर्ग चारों तरफ बहुत दूर तक अगाध जल से भरा हुआ होता है और वृक्ष दुर्ग कम से कम चार कोस तक सघन बड़े वृक्षों, कंटीली झाड़ियों, लताओं और नदी–नालों से घिरा होता है। मनुष्य दुर्ग चारों तरफ हाथी, घोड़ा, रथ एवं पैदल सेना तथा दूसरे बहुत मनुश्यों से सुरक्षित स्थान होता है। इसी प्रकार गिरि दुर्ग अत्यधिक कठिनाई से चढ़ने योग्य तथा अधिक संकीर्ण मार्ग होने के कारण दुर्गम्य नदियों, झरनों और पहाड़ों से युक्त होता है। मनुस्मृति में इन सभी दुर्गो में गिरि दुर्ग को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है–

सर्वेण तु प्रयत्नेन गिरिदुर्ग समाश्रयेत्। एशां हि बाहुगुण्येन गिरिदुर्ग विशिष्यते।

शुक्र नीति में दुर्गों को नौ श्रेणियों में विभक्त किया गया है। ये श्रेणियां है– एरण दुर्ग, पारिख दुर्ग, वन दुर्ग, धन्व दुर्ग, जल दुर्ग, गिरि दुर्ग, सैन्य दुर्ग, पारिध दुर्ग तथा सहाय दुर्ग। जिस दुर्ग का मार्ग कांटों और पत्थरों से परिपूर्ण होने के कारण दुर्गम हो, वह एरण दुर्ग और जिसके चारों तरफ बहुत बड़ी खाई हो वह पारिख दुर्ग कहलाता है। जिस दुर्ग के चारों तरफ ईंट, पत्थर तथा मिट्टी से बनी बड़ी–बड़ी दीवारों का परकोटा हो वह पारिध दुर्ग की श्रेणी में आता है जबकि जिसके चारों तरफ रेतीली भूमि से घिरे दुर्ग को धन्व दुर्ग कहते है। चारों तरफ अथाह जलराशि से घिरे दुर्ग को धन्व दुर्ग कहते है। इसी प्रकार चारों तरफ अथाह

जलराशि से घिरे दुर्ग को जल दुर्ग और पहाड़ी पर बने किले को गिरि दुर्ग कहते हैं जबकि रणबांकुरों की व्यूह रचना से युक्त दुर्ग को सैन्य दुर्ग और भूरवीरों के अनुकूल रहने वाले लोगों से युक्त दुर्ग को सहाय दुर्ग कहते है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में दुर्ग के चार भेद बताये गये है– औदक, पार्वत, धान्वन और वन दुर्ग।

जिन स्थानों पर अरावली पर्वत की श्रेणियां नही हैं– वहाँ भूमि दुर्ग बनाये गये। भूमि दुर्गों में बीकानेर का जूनागढ़, भरतपुर का लोहागढ़ और जयपुर का चौमू दुर्ग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मरूभूमि के किले धान्वन श्रेणी में आते हैं। धान्वन श्रेणी के किलों में बीकानेर, जैसलमेर और नागौर के किले लिये जा सकते है। इनमें बीकानेर, भरतपुर और नागौर किलों के चारों तरफ से भरी खाईयां इन्हें अलग विशिष्टता प्रदान करती है। राज्य में जल दुर्ग भी बनाये गये। इस श्रेणी में गागरोण और भैसरोड़गढ़ को सम्मिलित किया जा सकता है। यद्यपि भास्त्रों के अनुसार ये पूर्ण रूप से जल दुर्ग नहीं कहे जा सकते किन्तु वर्गीकरण में ये जल दुर्ग के अधिक निकट है।

जोधपुर दुर्ग

मेहरानगढ़ का निर्माण जोधपुर के यशस्वी संस्थापक राव जोधा ने करवाया था। उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार राव जोधा ने विक्रम संवत् 1515 की ज्येश्ठ सुदी 11 भानिवार (13 मई, 1459 ई.) को इस किले की नींव रखी और उसके चारों ओर नगर बसाया जो उनके नाम पर जोधपुर कहलाया। यह दुर्ग मंडोर ले लगभग 6 किलोमीटर दक्षिण में एक विशाल पहाड़ी पर बना हुआ है। किले वाली पहाड़ी प्रसिद्ध योगी चिड़ियानाथ के नाम पर चिड़िया टूंक कहलाती थी। अनुमान है कि अपनी विशालता के कारण सम्भवतः यह किला मेहरानगढ़ कहलाया–गढ़ बण्यो मेहराणा' मयूराकृति का होने के कारण जोधपुर के किले को मयूर ध्वजगढ़ (मोरध्वजगढ़) भी कहते है।

जोधपुर का यह सुदृढ़ और विशाल दुर्ग भूमि तल से लगभग 400 फीट ऊंचा है। किले के चारों और मजबूत परकोटा है जो 20 फीट से 120 फीट तक ऊंचा और 12 फीट से 20 फीट चौड़ा है। किले का क्षेत्रफल लम्बाई में 500 गज और चौड़ाई में 250गज है। इसकी प्राचीन में विशाल बुर्जे बनी हुई है। उन्नत प्राचीर और विशाल बुर्जो ने जोधपुर के किले को एक दुर्भेद्य दुर्ग का स्वरूप प्रदान किया। इस दुर्ग के प्रवेश द्वारों में लोहापोल, जयपोल, और फतेहपोल प्रमुख है। इनमें लोहापोल का निर्माण राव मालदेव ने विक्रम संवत 1605 में प्रारम्भ करवाया था, जिसे महाराजा विजयसिंह ने पूरा करवाया। इस द्वार पर किले की रक्षार्थ काम आने वाले यौद्धाओं के साथ सहगमन करने वाली वीरांगनाओं के हाथों के छापे लगे है। उत्तर–पूर्व में बने जयपोल प्रवेभा द्वार का निर्माण जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने करवाया था। इसमें लगे लोहे के विशाल किवाड़ो को महाराजा अभयसिंह की सर बलंदखां के विरूद्ध मुहिम में निमाज के ऊदावत ठाकुर अमरसिंह अहमदाबाद से लूट कर लाये थे जिन्हें बाद में महाराजा मानसिंह ने उनके वंशजों से लेकर यहाँ लगवाया। दक्षिण–पश्चिम में बने फतेह पोल का निर्माण जोधपुर पर मुगल खालसा (आधिपत्य) उठा दिए जाने के उपलक्ष्य में करवाया गया था। किले के अन्य प्रमुख प्रवेश द्वारों में ध्रुवपोल, सूरजपोल, अमृतपोल और भैरोंपोल उल्लेखिनीय है।

जोधपुर का किला अपने अनूठे स्थापत्य और विशिष्ट संरचना के कारण भी अपनी विशेष पहचान रखता है। लाल पत्थरों से निर्मित और अलंकृत जाली झरोखों से सुशोभित इस किले के महल राजपूत स्थापत्य कला के उत्कृश्ट उदाहरण है। इनमे महाराजा सूरसिंह द्वारा विक्रम संवत् 1602 के लगभग निर्मित मोती महल सुनहरी अलंकरण व सजीव चित्रांकन के लिए प्रसिद्ध है। इसकी छत व दीवारों पर सोने की पॉलिश का बारीक काम महाराजा तखत सिंह ने करवाया था। इसी तरह महाराजा अभय सिंह द्वारा विक्रम संवत् 1781 में निर्मित फूल महल पत्थर पर बारीक खुदाई और कुराई के लिए प्रसिद्ध है। जोधपुर से मुगल खालसा उठाने के उपलक्ष्य में महाराजा अजीत सिंह द्वारा निर्मित फतेह महल भी बहुत सुन्दर और आकर्शक है। किले के अन्य प्रमुख भवनों में ख्वाबगाह का महल, तख्तविलास, दौलतखाना, चौकेलाव महल, बीचला महल, रनिवास सिलहखाना, तोपखाना, मानसिंह पुस्तक प्रकाश पुस्तकालय उल्लेखनीय है।

चितौड़ दुर्ग

इस किले के साथ हजारों क्षत्रिय यौद्धाओं के भौर्य और पराक्रम के अनगिनत रोमांचक प्रसंग भी जुड़े हुए है। यह किला अजमेर से खण्डवा जाने वाले रेलमार्ग पर चित्तौड़गढ़ जंक्शन से 3–4 किलोमीटर दूर गंभीरी व बेड़च नदियों के संगम स्थल के समीप

अरावली पर्वतमाला के एक विशाल पर्वत शिखर पर बना है। समुद्रतल से इसकी ऊंचाई लगभग 1850 फीट है। क्षेत्रफल की दृश्टि से इसकी लम्बाई साढे तीन मील व चौड़ाई आधा मील है। दिल्ली से मालवा और गुजरात जाने वाले मार्ग पर अवस्थित होने के कारण प्राचीन और मध्यकाल में इस किले का विशेष सामरिक महत्व था।

उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर पता चलता है कि इसका संबंध मौर्य वंशीय भासको से था। मेवाड़ के इतिहास ग्रंथ वीर विनोद के अनुसार मौर्य राजा चित्रांग (चित्रांगद) ने यह किला बनवाकर अपने नाम पर इसका नाम चित्रकोट रखा था, उसी का अपभ्रंश चित्तौड़ है। इतिहासकार कर्नल टॉड को उपलब्ध विक्रम संवत् 770 के लेख शिलालेख में उक्त मौर्य भासक का उल्लेख है। इस वंश का अन्तिम शासक मान मोरी था, जिसके द्वारा निर्मित एक तालाब किले के भीतर आज भी विद्यमान है। मेवाड़ मे गुहिल राजवंश के संस्थापक बप्पा रावल ने इस अंतिम मौर्य भासक को पराजित कर लगभग आठवीं भाताब्दी में चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् मालवा के परमार राजा मुंज ने इसे अपने राज्यान्तर्गत किया तथा बाद में गुजरात के प्रतापी सौलंकी नरेश सिद्धराज जयसिंह ने चित्तौड़ के इस ऐतिहासिक दुर्ग पर अपनी विजय पताका फहरायी। बारहवीं भाताब्दी के लगभग चित्तौड़ पर पुनः गुहिल राजवंश का आधिपत्य हुआ। यद्यपि इस किले पर अधिकांशतः मेवाड़ के गुहिल राजवंश का अधिपत्य रहा तथा विभिन्न कालों में यह मौर्य, प्रतिहार, परमार, सौलंकी, खिलजी, सोनगरे चौहानों और मुगलो बादशाहों के भी अधीन रहा।

यह प्राचीन किला गिरी दुर्ग का सुन्दर उदाहरण है। किले पर जाने का प्रमुख मार्ग पश्चिम की ओर से है जो भाहर के भीतर से पुरानी कचहरी के पास से जाता है। इस मार्ग में सात प्रवेश द्वार है जो एक सुदृढ़ प्राचीन द्वारा आपस में जुड़े हैं, इनमें प्रथम दरवाजा पाडलपोल कहलाता है। किले का दूसरा प्रवेश द्वार भैरवपोल और तीसरा हनुमानपोल है। इन दोनों ऐतिहासिक दरवाजों के मध्य अकबर की सेना को लोहे के चने चबाने वाले अतुल पराक्रमी जयमल और कल्ला राठौड़ की छतरियां बनी है जो 1567 ई. के दुर्धर्ष युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुये थे। तत्पश्चात् गणेशपोल, जोड़लापोल और लक्ष्मणपोल आते है। सातवां और अन्तिम दरवाजा रामपोल है जिसके सामने मेवाड़ के आमेठ ठिकाने के यशस्वी पूर्वज पत्ता सिसोदिया का स्मारक है। चित्तौड़ के किले के भीतर अनेक पुराने महल, भव्य देवमंदिर, कीर्तिस्तम्भ, अथाह पानी वाले जलाशय, विशाल बावड़िया, भास्त्रागार, अन्न भण्डार, गुप्त सुरंग इत्यादि विद्यमान है।

जयगढ़ दुर्ग

जयपुर–दिल्ली राजमार्ग पर अवस्थित जयगढ़ का प्रसिद्ध दुर्ग है। जयगढ़ गिरि दुर्ग की श्रेणी में आता है। किले में तीन दरवाजे हैं। एक दक्षिण की ओर है जो जयपुर नगर से जुड़ा है। वहाँ एक पक्की सड़क है और यात्रियों की गाड़ियां वहाँ तक आती है, विशष शुल्क देकर अन्दर भी आ सकती है। दूसरा मुख्य द्वार आमेर के महलों की ओर है, जो आमेर से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर है। तीसरा दरवाजा भैरोंजी के मंदिर से सागर की ओर जाता है।

जयगढ़ के महलों की कई विशेषताएं है और इन्हें देखने से पहले एक बात ध्यान में रखनी होगी कि यह किला आपातकालीन निवास के लिए बनाया गया था। सामरिक दृष्टि से तो हर प्रकार से सुसज्जित था ही, दमदमा पर तोपें तैयार रहती थीं और विजयगढ़ी में बारूद के भण्डार भरे रहते पर निवास के लिए जो महलायत थे, वे सामान्य थे क्योंकि यह आपातकालीन निवास स्थान था।

गागरोण का जल दुर्ग

यह ख्यातनाम दुर्ग अरावली पर्वतमाला की एक सुदृढ़ चट्टान पर कालीसिंध और आहू नदियों के संगम स्थल पर स्थित है। तीन तरफ से उक्त नदियों से घिरा होने के कारण यह हमारे प्राचीन भास्त्रों में वर्णित जल दुर्ग की कोटि में आता है। एक ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार गागरोण पर पहले डोड (परमार) राजपूतों का अधिकार था, जिन्होने इस दुर्ग का निर्माण करवाया। उनके नाम पर यह डोड गढ़ या धूलर गढ़ कहलाया। त्पश्चात् यह दुर्ग खीचीं चौहानों के अधिकार में आ गया। चौहान कुल कल्पद्रुम के अनुसार गागरोण के खीची राजवंश का संस्थापक देवन सिंह उर्फ धारू था जिसने बीजलदेव नामक डोड भासक को (जो उसका बहनोई था) मारकर धूलर गढ़ पर अधिकार कर लिया तथा उसका नाम गागरोण रखा।

तिहरे परकोटे से सुरक्षित गागरोण दुर्ग के प्रवेश द्वारों में सूरजपोल, भैरवपोल तथा गणेशपोल प्रमुख है। इसकी विशाल सुदृढ़

बुर्जो में राम बुर्ज और ध्वज बुर्ज उल्लेखनीय है। यहाँ के विशिष्ट स्थलों में विशाल जौहर कुण्ड तथा राजा अचलदास और उनकी रानियों के महल, नक्कारखाना, बारूदखाना, टकसाल, मधुसूदन और भीतलामाता के मंदिर, सूफी संत मिट्ठे साहब की दरगाह तथा औरंगजेब द्वारा निर्मित बुलन्द दरवाजा प्रमुख है। किले के भीतर शत्रु पर पत्थरों की वर्षा करने वाला विशाल यंत्र आज भी विद्यमान है। किले के पार्श्व में कालीसिंध के तट पर एक ऊंची पहाड़ी को गीध कराई कहते है। जनश्रुति है कि पुराने समय में जब किसी राजनैतिक बंदी को मृत्युदंड देना होता था तब उसे इस पहाड़ी पर से नीचे गिरा दिया जाता था।

भटनेर का किला बांका गढ़

भाटियों के भौर्य और पराक्रम का साक्षी भटनेर का प्राचीन दुर्ग बीकानेर से लगभग 144 मील उत्तर–पूर्व में हनुमानगढ़ में अवस्थित है। घग्घर नदी के मुहाने पर बसे इस प्राचीन दुर्ग को उत्तरी सीमा का प्रहरी कहा जाये तो कोई अति योक्ति नहीं होगी क्योंकि मध्य एशिया, सिन्ध व काबुल के व्यापारी मुलतान से भटनेर होते हुए दिल्ली व आगरा आते–जाते थे। दिल्ली–मुलतान मार्ग पर स्थित होने के कारण भटनेर का बड़ा सामरिक महत्व था जनश्रुति के अनुसार इस प्राचीन दुर्ग का निर्माण भाटी राजा भूपत ने तीसरी भाताब्दी के अंतिम चरण में करवाया था। इस दुर्ग के घेरे में लगभग 52 बीघा भूमि है तथा इसमें इतनी ही विशाल बुर्जे और अथाह जल राशि वाले कुँए है। किले का निर्माण पकी हुई ईटों और चूने से हुआ है। अपनी विशिष्ट सामारिक स्थिति और महत्व के कारण भटनेर को अपने निर्माण के बाद से ही आक्रमणकारियों के जितने प्रहार झेलने पड़े उतने भारत के भाायद ही अन्य किसी दुर्ग को झेलने पड़े होगें। अन्ततः बीकानेर के महाराजा सूरत सिंह के भासनकाल (1805 ई.) में पांच महीने के लगातार घेरे के बाद राठौड़ो ने जाब्ता खां भट्टी से भटनेर ले लिया और इस प्राचीन दुर्ग पर बीकानेर राज्य का अधिकार हो गया। महाराजा सूरत सिंह द्वारा मंगलवार के दिन दुर्ग हस्तगत किये जाने के कारण भटनेर का नाम हनुमानगढ़ रख दिया तथा इस उपलक्ष्य में किले में हनुमानजी के एक मंदिर का भी निर्माण करवाया गया। वर्तमान में यह दुर्ग भग्न और जर्जर अवस्था में है। किले के एक प्रवेश द्वार पर एक राजा के साथ छह स्त्री आकृतियां बनी हुई है। संभवतः ये आकृतियां बीकानेर के राजा दलपत सिंह और उनकी रानियों की हैं। किले के एक दूसरे प्रवेश द्वार पर विक्रम संवत् 1665 (1608 ई.) को फारसी लिपि का एक संक्षिप्त लेख उत्कीर्ण है, जिसके अनुसार राव मनोहर कछवाहा ने शाही आज्ञा से वहा मनोहरपोल नामक दरवाजा बनवाया।

जूनागढ़ दुर्ग

बीकानेर भाहर के हृदय स्थल कोटगेट से थोड़ी दूरी पर बना जूनागढ़ किला 500 वर्श पुरानी स्थापत्य कला का अनुपम उदाहरण है। लगभग 1078 गज की परिधि में फैले इस किले का निर्माण राजा रायसिंह (1571–1611 ई.) ने अपने शासन काल में कराया था। इसका निर्माण कार्य 1588 ई. में आरम्भ हुआ था। करीब 5 वर्षो तक इसका प्रारम्भिक निर्माण कार्य चलता रहा। इसके बाद अन्य भासकों ने भी इसके निर्माण कार्य में अपनी भूमिका निभाई, इसके चारों ओर गहरी खाई बनी है जो ऊपर से तीस फीट चौड़ी है। इसकी दीवारें अब ध्वस्त हो चुकी है।

50 किले के दो प्रधान द्वार है। मुख्य प्रवेश द्वार के बाद कर्णपोल और सूरजपोल है। सूरजपोल में हाथियों पर सवार जयमल मेड़तिया और पता चूंडावत की मूर्तियां है। ये दोनों वीर योद्धा चित्तौड़ में औरंगजेब से हुए युद्ध में शहीद हो गये थे। इसके बाद आता है बड़ा चौक जहाँ मर्दाना और जनाना महल बने है। इन महलो में कांच की सुन्दर पच्चीकारी और सुनहरी कलम का मनमोहक कार्य है। यहीं पर बना हर मंदिर राज परिवार के विशष समारोहों का आयोजन स्थल है। जूनागढ़ के दर्शनीय महलों में फूल महल, बादल महल, चन्द्र महल और गज मंदिर प्रमुख है। महाराजा सूरत सिंह का अनूप महल, सरदार सिंह का रतन निवास, डूंगर सिंह का छत्र महल, गणपत निवास, लाल निवास, सरदार निवास और हरमंदिर तथा चीनी बुर्ज सभी अनूठे सौन्दर्य और तत्कालीन भासकों के कला प्रेम के परिचायक है।

जूनागढ के इस किले में महाराजा डूंगर सिंह, गंगा सिंह, कर्णसिंह अनूप सिंह, शार्दुल सिंह आदि महाराजाओं का अतुलनीय योगदान है। यहाँ के तोरण, स्तंभ, छज्जे, जालियां, मेहराबें और चौक हर युग के राजसी वैभव का अलग ही अंदाज में बयान करते हैं। इसीलिए लोक गीतों और कहावतों में कहा गया है कि नागौर का किला मजबूती के लिए और बीकानेर का किला अपने भानदार शिल्प के लिए मशहूर है।

भरतपुर दुर्ग

इस किले के निर्माण कार्य में लगभग आठ वर्श लगे। डीग के स्थान पर भरतपुर जाट राज्य की गतिविधियों का नया केन्द्र बन गया। इस किले की यह विशेषता है कि इसकी जल से भरी हुई विस्तृत खाई तथा बाहरी मिट्टी की विशाल प्राचीर इसकी रक्षा व्यवस्था में बड़ा सहयोग करती थी। इससे तोपों की गोलाबारी भी किले को कोई नुकसान नहीं पहुँचा पाती थी। उस समय यहाँ के भूरवीर योद्धाओं ने इस किले को अजेय बनाये रखा। भरतपुर दुर्ग आगरा से 55 किलोमीटर, मथुरा से 33 किलोमीटर तथा जयपुर से 176 एवं दिल्ली से 170 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। इस किले के निर्माण के समय दिल्ली के मुगल दरबार की ओर से इसकी तामीर रूकवाने के भी काफी प्रयास किये गय। इस किले के बाहरी भाग को चार भागों में विभक्त किया गया है जो गोपालगढ़, रामगढ़, किशनगढ़, तथा फतहगढ़, के नाम से प्रसिद्ध हुए। इसमें किले को घेरने वाली बाहरी दीवार की परिधि साढे दस किलोमीटर है। इस किले को दो विशाल मिट्टी की गोलाकार दीवारें एक दूसरे को घेर कर खड़ी हुई है। किले का दक्षिणी दरवाजा लोहिया द्वार कहलाता है। जबकि उत्तरी दरवाजे को अष्टधाती द्वार कहते है। इस द्वार पर लगे अष्टधातु के किवाड़ो को सन् 1764 में महाराणा जवाहर सिंह ने दिल्ली के लाल किले से उखाड़ कर यहां लाकर लगाया था। कहते है कि इस अश्टधातु जोड़ी को पहले मुगल बादशाह चित्तौड़ किले से उखाड़ कर दिल्ली ले गये थे।

भरतपुर किले के 12 दरवाजे बने हुये थे जिनमें से अब कई ध्वस्त भी हो चुके है। इनके नाम मथुरापोल, बीनारायण पोल, अटलबंदपोल, नीमपोल, अनाहपोल, कुम्हेरपोल, चांदपोल, गोवर्धन पोल, जधीनापोल, सूरजपोल, दिल्ली दरवाजा है। इस किले में अन्य कई दर्शनीय इमारतें भी है जिनमें किशोरी महल, महल खास, कोठी खास, दादी मां का महल, वजीर की कोठी, दरबार खास, सिलहखाना, बिहारी व मोहनजी के मंदिर मुख्य है।

रणथम्भोर दुर्ग

सवाई माधोपुर से लगभग छह मील दूर रणथम्भोर अरावली पवर्तमाला की श्रृंखलाओं से घिरा एक विकट दुर्ग है। यह विषम आकृति वाली ऊंची–नीच सात पर्वत श्रेणियों से घिरा है, जिनके बीच–बीच में गहरी खाइयां और नाले है, जो इस क्षेत्र में प्रवाहित होने वाली चम्बल और बनास नदियों से मिलते है। रणथम्भोर दुर्ग एक ऊंचे के समीप जाने पर ही यह दिखाई देता है। रणथम्भोर का वास्तविक नाम रन्तःपुर है अर्थात् रण की घाटी में स्थित नगर। रण उस पहाड़ी का नाम है जो किले की पहाड़ी से कुछ नीचे है एवं थंम (स्तम्भ) जिस पर यह किला बना है। इसी से इसका नाम रणस्तम्भपुर (रण+स्तम्भ+पुर) हो गया।

रणथम्भोर दुर्ग तक पहुँचने का मार्ग संकरी व तंग घाटी से होकर सर्पिलाकार में आगे जाता है। किले से संबंधित प्रमुख ऐतिहासिक स्थानों में नौलखा दरवाजा, हाथीपोल, गणेशपाले, सूरजपोल और त्रिपोलिया प्रमुख प्रवेश द्वार है। त्रिपोलिया अंधेरी दरवाजा भी कहलाता है। इसके पास ही से एक सुरंग महलों तक गई है। इसके अलावा हम्मीर महल, रानी महल, हम्मीर की कचहरी, सुपारी महल, बादल महल, जौरां–भौरां, 32 खम्भों की छतरी, रनिहाड़ तालाब पीर सदरूद्दीन की दरगाह, लक्ष्मीनारायण मंदिर (भग्न रूप में) जैन मंदिर तथा समूचे देश में प्रसिद्ध गणेश जी का मंदिर दुर्ग के प्रमुख स्थान है। किले के पार्श्व में पद्मला तालाब तथा अन्य जलाशय है। इतिहासकारों की मान्यता है कि इस दुर्ग का निर्माण आठवीं शताब्दी ई. के लगभग अजमेर के चौहान भासकों द्वारा कराया गया। रणथम्भोर की सर्वाधिक गौरव मिला यहाँ के वीर और पराक्रमी शासक राव हम्मीर देव चौहान के अनुपम त्याग और बलिदान से। हम्मीर के इस अद्भुत त्याग और बलिदान से प्रेरित हो संस्कृत, प्राकृति, राजस्थानी एवं हिन्दी आदि सभी प्रमुख भाषाओं में कवियों ने उसे अपना चरित्रनायक बनाकर उसका यशोगान किया है।

जालौर दुर्ग

जालौर का किला पश्चिमी राजस्थान के सबसे प्राचीन और सुदृढ़ दुर्गो में गिना जाता हैं। सूकड़ी पदी के दाहिने किनारे पर अवस्थित इस किले को प्राचीन साहित्य और शिलालेखों में जाबालिपुर, जालहुर आदि नामों से अभिहित किया गया है। जनश्रुति के अनुसार इसका एक नाम जालन्धर भी था। जिस विशाल पर्वत शिखर पर यह प्राचीन किला बना है उसे सोनगिरि (स्वर्णगिरि) व कनकाचल तथा किले को सोनगढ़ अथवा सोनलगढ़ कहा गया है।

ज्ञात इतिहास के अनुसार जालोर और उसका निकटवर्ती इलाका गुर्जर देश का एक भाग था तथा यहाँ पर प्रतिहार शासकों का

वर्चस्व था। प्रतिहारों के पश्चात् जालौर पर परमारों (पंवारों) का भासन स्थापित हुआ। जालौर दुर्ग पर विभिन्न कालों में प्रतिहार, परमार, चालुक्य (सोलंकी) चौहान, राठौड़, इत्यादि राजपूत राजवंशो ने शासन किया, वहीं इस दुर्ग पर दिल्ली के मुस्लिम सुलतानों, मुगल बादशाहों तथा अन्य मुस्लिम वंशो का भी अधिकार रहा। जालौर दुर्ग के स्थापत्य की प्रमुख विशेषता यह है कि इसकी उन्नत प्राचीर ने अपनी विशाल बुर्जो सहित समूची पर्वतमाला को अपने में इस तरह समाविष्ट कर लिया कि इससे किले की सही स्थिति और रचना के बारे में बाहर से कुछ भी पता नहीं चलता।

जालौर दुर्ग के भीतर जाने के लिए मुख्य मार्ग शहर के भीतर से है। लगभग 5 किलोमीटर सर्पिलाकार प्राचीर से गुम्फित इस मार्ग में सूरजपोल किले का प्रथम प्रवेश द्वार है जिसकी धनुशाकार छत का स्थापत्य अपने शिल्प और सौन्दर्य के साथ सामरिक सुरक्षा की आवश्यकता का सुन्दर समावेश किये हुए है। यह प्रवेश द्वारा एक सुदृढ़ दीवार से इस प्रकार आवृत है कि आक्रान्ता प्रवेश द्वार को अपना निशाना नहीं बना सके। इसके पार्श्व में ए विशाल बुर्ज बनी है। दुर्ग का दूसरा प्रवेश द्वार ध्रुवपोल, तीसरा चांदपोल और चतुर्थ सिरेपोल भी बहुत मजबूत और विशाल है।

जालोर दुर्ग के ऐतिहासिक स्थलों में महाराजा मानसिंह के महल और झरोखें, दो मंजिला रानी महल, प्राचीन जैन मंदिर, चामुण्डा माता औश्र जोगमाया के मंदिर, दहियों की पोल, सन्त मल्लिकशाह की दरगाह प्रमुख और उल्लेखनीय है।

कुम्भलगढ़ दुर्ग

कुम्भलगढ़ का दुर्ग सादड़ी ग्राम के पास मेवाड़ और मारवाड़ी की सीमा पर स्थित है। उदयपुर से इसकी दूरी लगभग 60 मील है। मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा पर स्थित होने तथा चारों और पहाड़ियों से घिरे होने के कारण यह दुर्ग सामरिक दृष्टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण था। कुम्भलगढ़ दुर्ग का निर्माण महाराणा कुम्भा ने सूत्रधार मण्डन की देखरेख में सन् 1443 से 1458 के मध्य करवाया था। इस दुर्ग को कुम्भलमेरन तथा कुम्भलमेर के नाम से भी पुकारा जाता है।

इसमें विजयपोल के बाद रामपोल है। यहाँ ये आगे बढ़ने पर क्रमशः भैरवपोल, नीबूपोल, पाखडापोल और गणेशपोल आते है। गणेशपाल के बाद दुर्ग का चौरस भाग आ जाता है। जहाँ स्थापत्य कला के कुछ नमूने जीर्णशीर्ण अवस्था में आज भी विद्यमान है। दुर्ग के निचले भाग में छोटे–छोटे जलाशय बने हुए है। इसी भाग में मामादेव का कुण्ड बना हुआ है और कुण्ड के पास ही कुम्भा द्वारा निर्मित कुम्भास्वामी का विष्णु मंदिर है। इस मंदिर के पास ही पृथ्वीराज का स्मारक है जो छतरीनुमा है। छतरी के बीच में लगे शिलाखण्ड पर 17 स्त्रियों की मूर्तियां तथा उनके बीच में चारों तरफ पृथ्वीराज की मूर्ति उत्कीर्ण है। पृथ्वीराज स्त्रियों की वेशभूशा तथा आभूशणों से 15 वीं भाताब्दी की वेशभूशा तथा सामाजिक व्यवस्था की अच्छी जानकारी मिलती है।

कुम्भलगढ़ की सबसे बड़ी विशषता यह है कि इस दुर्ग के भीतर एक और दुर्ग सबसे ऊचें भाग पर स्थित है। सीढी चढ़ाई के कारण इस भीतरी दुर्ग को कटारगढ़ कहा जाता है। कटारगढ़ भी सुदृढ़ द्वारों और प्राचीरों से सुरक्षित है। इसी में राजमहल बने हुए है। खाद्यान्न व युद्ध सामग्री को एकत्र करने के लिए यहाँ बड़े–बड़े गोदाम बने हुए है। राज महलों की सीमा में ही अश्वशाला और पीलखाना (हाथियों का बाड़ा) बना हुआ है। महलों के द्वार इतने छोटे है कि इनमें काफी झुक कर प्रवेश करना पड़ता है। हरविलास भारदा ने इस कुम्भा की सैनिक और रचनात्मक मेघा का प्रतीक बताया है जो सैनिक व ऐतिहासिक ख्याति में अद्वितीय है।

संवि. व्याख्याता,

जगत्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत, विश्वविधालय, जयपुर

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. राघवेन्द्र सिंह मनोहरः राजस्थान के प्रमुख दुर्ग, प्रकाशक– राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
2. डॉ. हुकम चन्द जैनः डॉ. नारायण लाल मालीः राजस्थान का इतिहास, कला, संस्कृति, साहित्य, परम्परा एवं विरासत, प्रकाशक–राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
3. Sanjeev Kumar Bhasin-Forts and Palaces of Rajasthan History, Art and Architecture. Panchsheel Prakashan, Jaipur
4. प्रो. के.एस. गुप्ता, डॉ. जे.के ओझाः राजस्थान का इतिहास एक सर्वेक्षण
5. डॉ. गोपीनाथ भार्माः राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।